सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार

प्राचीन इतिहास
स्नातक प्रथम वर्ष

डॉ. विश्वनाथ वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
हरिश्चंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.)
E-mail : drvn.verma@gmail.com
Website : www.worldwidehistory.com

सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार

चंद्रगुप्त मौर्य की गणना भारत के महानतम् शासकों में की जाती है। उसके आगमन से भारतीय इतिहास में एक नये युग का सूत्रापात हुआ। वह भारतीय इतिहास का पहला सम्राट है जिसकी ऐतिहासिकता प्रमाणित कालक्रम के ठोस आधार पर सि) की जा सकती है। यूनानी लेखक प्लूटार्क ने इसे एंड्रोकोट्टस तथा जस्टिन, एरियन आदि ने सेंड्रोकोट्टस कहा है। विलियम जोंस पहले विद्वान् थे, जिन्होंने 'सेंड्रोकोट्टस' की पहचान भारतीय ग्रंथों के 'चंद्रगुप्त' से की है।

चंद्रगुप्त मौर्य

चंद्रगुप्त मौर्य के आरंभिक जीवन के पुनर्गठन का आधार किंवदंतियाँ एवं परंपराएँ ही अधिक हैं, और ठोस प्रमाण कम हैं। उसके प्रारंभिक जीवन के संबंध में बौद्ध-जैन सूत्रों से पता चलता है कि चंद्रगुप्त मौर्य का जन्म पिप्पलिवन के मोरिय नामक क्षत्रिय कुल में हुआ था, जिनका शाक्यों के साथ संबंध था। चंद्रगुप्त का पिता (सूर्यगुप्त?) मोरियगण का प्रधान था। दुर्भाग्यवश वह एक सीमांत युद्ध में मारा गया। उसकी विधवा रानी अपने भाइयों के साथ भागकर पुष्पपुर (कुसुमपुर, पाटलिपुत्र) नामक नगर में पहुँची, जहाँ उसने चंद्रगुप्त को जन्म दिया। सुरक्षा की दृष्टि से बालक को उसके मामाओं ने एक गोशाला में छोड़ दिया, जहाँ 'चंद्र' नामक वृषभ द्वारा रक्षा किये जाने के कारण उसका नाम चंद्रगुप्त पड़ा। एक गड़रिये ने पुत्र की तरह उसका लालन-पालन किया और जब वह बड़ा हुआ तो उसे एक शिकारी के हाथ बेच दिया, जिसने उसे गाय-भैंस चराने का काम सौंपा। कहते हैं कि एक साधारण ग्रामीण बालक चंद्रगुप्त ने 'राजकीलम्' नामक एक खेल का आविष्कार करके जन्मजात नेता होने का परिचय दिया। इस खेल में वह राजा बनता था और अपने साथियों को अपना अनुचर बनाता था। वह राजसभा भी आयोजित करता था, जिसमें बैठकर वह न्याय करता था। गाँव के बच्चों की एक ऐसी ही राजसभा में चाणक्य (तक्कसिलानगरवासी) ने पहली बार चंद्रगुप्त को देखा। चाणक्य ने अपनी दिव्य-दृष्टि से इस ग्रामीण बालक में राजत्व की प्रतिभा तथा चिन्ह को पहचान लिया और एक हजार कर्षापण देकर उसे उसके पालक-पिता से खरीद लिया।

महावंस से भी पता चलता है कि चंद्रगुप्त पिप्पलिवन के मोरिय गण का कुमार था। मोरिय गण वज्जि महाजनपद के पड़ोस में स्थित था। जब उत्तरी बिहार के गणराज्य एक-एक करके कोशल और मगध की साम्राज्यवादी नीति का शिकार हो रहे थे, मोरिय गण भी मगध साम्राज्य की प्रसारनीति की भेंट चढ़ गया। इस गण की एक राजमहिषी पाटलिपुत्र में छिपकर जीवन व्यतीत कर रही थी। यही कारण था कि चंद्रगुप्त का

मयूरपोषकों, चरवाहों तथा लुब्धकों के संपर्क में पालन हुआ। परंपरा के अनुसार वह बचपन में अत्यंत तीक्ष्णबुद्धि था एवं समवयस्क बालकों का सम्राट बनकर उनपर शासन करता था।

पालि ग्रंथों में मगध के तत्कालीन शासक का नाम धननंद बताया गया है। इसका उल्लेख संस्कृत ग्रंथों में केवल नंद के नाम से मिलता है। जिस समय चाणक्य पाटलिपुत्र आया था, उस समय धननंद वहाँ का राजा था। वह अस्सी करोड़ (कोटि) की संपत्ति का स्वामी था और खालों, गोंद वृक्षों तथा पत्थरों तक पर कर वसूल करता था। कथासरित्सागर में नंद की निन्यान्बे करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि उसने गंगा नदी की तली में एक चट्टान खुदवाकर उसमें अपना सारा खजाना गाड़ दिया था। उसकी धन-संपदा की ख्याति दक्षिण तक थी। तमिल भाषा की एक कविता में उसकी संपदा का उल्लेख इस रूप में किया गया है कि पहले वह पाटलि में संचित हुई और फिर गंगा की बाढ़ में छिप गई। नंदराज में दानशाला नामक एक संस्था थी, जिसका संचालन एक संघ के हाथों में था। इसका अध्यक्ष कोई ब्राह्मण ही होता था। नियम के अनुसार अध्यक्ष एक करोड़ मुद्राओं तक का दान दे सकता था और संघ का सबसे छोटा सदस्य एक लाख मुद्राओं तक का। चाणक्य को इस संघ का अध्यक्ष चुना गया, किंतु उसकी कुरूपता और धृष्टता के कारण नंदराजा ने उसे पदच्युत् कर दिया। चाणक्य ने उसके वंश को निर्मूल कर देने की धमकी दी और एक नग्न आजीविक साधु के भेष में वहाँ से भाग निकला। इसके बाद चंद्रगुप्त और चाणक्य की भेंट हुई।

कहते हैं कि भारत पर सिकंदर के आक्रमण के समय चाणक्य तक्षशिला में प्राध्यापक था। उसने चंद्रगुप्त को तक्षशिला के विद्या-केंद्र में भर्ती करा दिया, जहाँ उसे अप्राविधिक विषयों और व्यावहारिक तथा प्राविधिक कलाओं की सर्वांगीण शिक्षा दी गई। तक्षशिला प्राथमिक शिक्षा का ही नहीं, उच्च शिक्षा का भी प्रसिद्ध केंद्र था। जातक कथाओं से पता चलता है कि तीन वेदों तथा धनुर्विद्या (इस्सत्थ-सिप्प), आखेट तथा हाथियों से संबंधित ज्ञान (हत्थिसुत्त) जैसे अठारह 'सिप्पों' अर्थात् शिल्पों की शिक्षा दी जाती थी। संभवतः शिक्षा ग्रहण करते समय ही चंद्रगुप्त ने महान् विजेता सिकंदर से पंजाब में भेंट की थी ,जो उसके सैनिक-प्रशिक्षण का ही एक अंग था। प्लूटार्क ने लिखा है कि ऐंड्रोकोट्टस (चंद्रगुप्त), जो उस समय नवयुवक ही था, स्वयं सिकंदर से मिला था। जस्टिन बताता है कि किसी कारणवश रुष्ट होकर सिकंदर ने चंद्रगुप्त को बंदी बना लेने का आदेश दिया था, किंतु चंद्रगुप्त उसके चंगुल से निकल भागा।

चंद्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ

इतिहासकारों में इस संबंध में मतभेद है कि चंद्रगुप्त तथा चाणक्य ने सर्वप्रथम पश्चिमोत्तर भारत में यूनानियों से युद्ध किया अथवा मगध के नंदों का विनाश किया। यूनानी-रोमन तथा बौद्ध स्रोतों से पता चलता है कि चंद्रगुप्त ने पहले पंजाब तथा सिंधु को विदेशी सत्ता से मुक्त किया था। वस्तुतः चंद्रगुप्त ने बुद्धिमत्तापूर्ण ढ़ंग से उपलब्ध संसाधनों का उपयोग किया और एक विशाल सेना का निर्माण कर विदेशी सत्ता के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। उसकी सेना में अर्थशास्त्र के अनुसार चोर अथवा प्रतिरोधक, म्लेच्छ, चोरगण, आटविक और शस्त्रोपजीवी श्रेणी के लोग सम्मिलित थे। इसलिए जस्टिन ने चंद्रगुप्त की सेना को 'डाकुओं का गिरोह' कहा है। मैक्रिंडल के अनुसार इससे तात्पर्य पंजाब के गणजातीय लोगों से है, जिन्होंने सिकंदर के आक्रमण का प्रबल प्रतिरोध किया था। मुद्राराक्षस तथा परिशिष्टपर्वन् से पता चलता है कि चंद्रगुप्त को पर्वतक नामक किसी पहाड़ी क्षेत्र के शासक से भी सहायता मिली थी। कुछ इतिहासकार इसकी पहचान पोरस से करते हैं। कुछेक इतिहासकार पर्वतक की पहचान अभिसार से करते हैं।[1]

यह चंद्रगुप्त का सौभाग्य था कि पंजाब तथा सिंधु की राजनीतिक परिस्थितियाँ पूर्णतया उसके अनुकूल थीं। सिकंदर के प्रत्यावर्तन के साथ ही इन प्रदेशों में विद्रोह उठ खड़े हुए और अनेक यूनानी क्षत्रप मौत के घाट उतार दिये गये। ई.पू. 323 में सिकंदर की मृत्यु के बाद सिंधु और पंजाब में सिकंदर द्वारा स्थापित प्रशासनिक ढाँचा लड़खड़ाने लगा था। इन प्रदेशों में घोर अराजकता और अव्यवस्था फैल गई जिससे चंद्रगुप्त का कार्य सरल हो गया। इतिहासकार जस्टिन के अनुसार 'सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् भारत ने अपनी गर्दन

से दासता का जुआ उतार फेंका तथा उसके गवर्नरों की हत्या कर दी। इस स्वतंत्रता का जन्मदाता सैंड्रोकोटस (चंद्रगुप्त) था।' इस प्रकार सिकंदर के क्षत्रपों के निष्कासन के पीछे चंद्रगुप्त की ही अप्रत्यक्ष भूमिका थी।

ऐसा लगता है कि फिलिप द्वितीय तथा सिकंदर की मृत्यु के बीच चंद्रगुप्त ने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु व्यापक योजना तैयार कर ली थी। अपनी व्यापक तैयारी के बाद उसने अपने को राजा बनाकर सिकंदर के क्षत्रपों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। यह चंद्रगुप्त की सैनिक शक्ति की सफलता थी कि ई.पू. 317 में पश्चिमी पंजाब के अंतिम यूनानी क्षत्रप यूडेमस ने भी भारत छोड़ दिया और सिंधु तथा पंजाब के प्रदेशों पर चंद्रगुप्त का अधिकार हो गया।

मगध पर अधिकार

चाणक्य तथा चंद्रगुप्त ने सीमांत प्रदेशों से अपना विजय-अभियान आरंभ किया और रास्ते में पड़नेवाले अनेक राष्ट्रों तथा जनपदों पर विजय प्राप्त किया। सबसे पहले उसने सीमांत के देशों पर आक्रमण किया और सार्वभौम सत्ता प्राप्त करने की इच्छा से गाँवों को लूटना आरंभ किया। चंद्रगुप्त सीमांत से भारत के अंत:प्रदेश की ओर मगध तथा पाटलिपुत्र की ओर बढ़ रहा था। किंतु उसने अपनी विजयों को सुरक्षित रखने के लिए पीछे अपनी कोई सेना नहीं नियुक्त की, जिसके कारण जैसे-जैसे वह आगे बढता, वैसे-वैसे पराजित जातियाँ पुन: स्वतंत्रतापूर्वक आपस में मिल जाती थी। इसके बाद चंद्रगुप्त ने सही रणनीति अपनाई और जैसे-जैसे राष्ट्रों तथा जनपदों पर विजय प्राप्त करता जाता, वैसे-वैसे वह वहाँ अपनी सेनाएँ भी नियुक्त करता गया।

मगध की विजय

सिंधु तथा पंजाब में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के बाद चंद्रगुप्त ने अपनी सेना के साथ मगध की सीमा में प्रवेश किया। तत्कालीन मगध का शासक धननंद संपन्नता और सैनिक शक्ति के बावजूद अपनी प्रजा में अलोकप्रिय था। उसने चाणक्य को भी एक बार अपमानित किया था, जिससे क्रुद्ध होकर उसने नंदों के विनाश की प्रतिज्ञा की थी। प्लूटार्क के विवरण से स्पष्ट है कि नंदों के विरुद्ध सहायता के लिए चंद्रगुप्त पंजाब में सिकंदर से मिला था। सिकंदर ने चंद्रगुप्त की सहायता तो नहीं की, किंतु उसकी मृत्यु के बाद चंद्रगुप्त ने पंजाब, सिंधु पर अधिकार करने के बाद पाटलिपुत्र का घेरा डाला। चंद्रगुप्त तथा नंदों के बीच जो युद्ध हुआ, उसका विवरण नहीं मिलता। बौद्ध, जैन स्रोतों से पता चलता है कि सबसे पहले चंद्रगुप्त ने नंद साम्राज्य के केंद्रीय भाग पर आक्रमण किया था, किंतु सफलता न मिलने पर उसने दूसरी बार सीमांत प्रदेशों की विजय करते हुए पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया। जैनग्रंथ परिशिष्टपर्वन् के एक छंद में कहा गया है कि 'नंद के शासन को समूल नष्ट करने के लिए जमीन के नीचे छिपाकर रखे गये घनकोषों की सहायता से चाणक्य ने चंद्रगुप्त की सेना के लिए सैनिक भरती किये।' कुछ इतिहासकारों का विचार है कि कदाचित् नंद के विरुद्ध अपने युद्ध में उसने यूनानी वेतनभोगी सैनिकों को भी प्रयोग किया था। चंद्रगुप्त तथा नंद के बीच जो लड़ाई हुई, उसका विवरण नहीं मिलता। संभवत: नंद-मौर्य युद्ध बड़ा भयानक हुआ था। बौद्ध ग्रंथ मिलिंदपन्हो में इस युद्ध का अतिरंजित वर्णन मिलता है। लगता है कि घमासान युद्ध में धननंद मार डाला गया और चंद्रगुप्त का मगध पर अधिकार हो गया। अब चंद्रगुप्त मौर्य एक विशाल साम्राज्य का स्वामी हो गया।

मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त को केवल नंदवंश के उन्मूलन तथा पंजाब-सिंधु में विदेशी शासन का अंत करने का ही श्रेय नहीं है, बल्कि उसे भारत के अधिकांश भूभाग पर अपना अधिकार स्थापित कर उसका एकीकरण करने का भी गौरव प्राप्त है। प्लूटार्क ने लिखा है कि 'उसने छ: लाख सेना लेकर समूचे भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया।' जस्टिन के अनुसार संपूर्ण भारत पर उसका अधिकार था। महावंस में कहा गया है कि कौटिल्य ने चंद्रगुप्त को सकल जंबूद्वीप का सम्राट बनाया। इससे पता चलता है कि चंद्रगुप्त ने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना कर ली थी।

पश्चिमी भारत की विजय

शक महाक्षत्रप रुद्रदामन् के जूनागढ़ लेख (150 ई.) से पता चलता है कि पश्चिम में सौराष्ट्र प्रांत चंद्रगुप्त के प्रत्यक्ष अधिकार में था। लेख के अनुसार वैश्य पुष्यगुप्त इस प्रदेश में चंद्रगुप्त मौर्य का राज्यपाल (राष्ट्रीय) था और उसने वहाँ सुदर्शन नामक एक झील को बनवाया था। सौराष्ट्र के दक्षिण में महाराष्ट्र के सोपारा से अशोक का एक लेख मिला है। बिंदुसार या अशोक द्वारा इस क्षेत्र की विजय करने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है, इसलिए इस प्रदेश की विजय का श्रेय भी चंद्रगुप्त को दिया जाना चाहिए।

दक्षिण भारत की विजय

चंद्रगुप्त की दक्षिण विजय के संबंध में अशोक के लेखों, तमिल एवं जैन स्रोतों से सूचना मिलती है। मैसूर से प्राप्त कुछ शिलालेखों के अनुसार उत्तरी मैसूर में चंद्रगुप्त का शासन था। अशोक के लेख सिद्धपुर, ब्रह्मगिरि, जटिंगरामेश्वर (चित्तलदुर्ग, कर्नाटक), गोविमठ, पालक्कि गुण्डु, मास्की तथा गूटी (करनूल, आंध्र प्रदेश) से प्राप्त हुए हैं। अशोकीय लेखों के अनुसार उसके साम्राज्य की दक्षिणी सीमा पर चोल, पांड्य, सत्तियपुत्त तथा केरलपुत्र जातियों का राज्य था। तेरहवें शिलालेख से पता चलता है कि अशोक ने मात्र कलिंग की ही विजय की थी और उसके बाद उसने युद्धघोष के स्थान पर धम्मघोष को अपना लिया था। जैन परंपरा के अनुसार चंद्रगुप्त ने भद्रबाहु की शिष्यता ग्रहण की थी और दोनों श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) नामक स्थान पर आकर बस गये थे। वहीं चंद्रगिरि पहाड़ी पर चंद्रगुप्त ने सलेखना व्रत का पालन करते हुए प्राण-त्याग किया था। इससे श्रवणबेलगोला पर उसका अधिकार प्रमाणित होता है।

मामुलनार नामक प्राचीन तमिल लेखक ने तिनेवेल्लि जिले की पोदियिल पहाड़ियाँ तक हुए मौर्य आक्रमणों का उल्लेख किया है। तमिल परंपरा से भी पता चलता है कि मौर्यों ने एक विशाल सेना के साथ कोशर और वड्डगर नामक जातियों के सहयोग से दक्षिण क्षेत्र में मोहर के राजा पर आक्रमण किया था। इस परंपरा से तमिल प्रदेश पर मौर्यों की विजय का अनुमान किया जाता है। चौदहवीं शताब्दी के एक अभिलेख के अनुसार शिकारपुर ताल्लुके के नागरखंड की रक्षा मौर्यों की जिम्मेदारी थी। इस प्रकार प्लूटार्क, जस्टिन, तमिल ग्रंथों तथा मैसूर के अभिलेखों के सम्मिलित प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्रथम मौर्य सम्राट ने विंध्यपार के अधिकांश भारतीय क्षेत्रों को अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

सेल्यूकस के विरुद्ध सफलता

चंद्रगुप्त का अंतिम युद्ध सिकंदर के पूर्वसेनापति तथा उसके समकालीन सीरिया के ग्रीक सम्राट सेल्यूकस निकेटर के साथ हुआ। ग्रीक इतिहासकार जस्टिन के उल्लेखों से पता चलता है कि सिकंदर की मृत्यु के बाद सेल्यूकस को उसके स्वामी के सुविस्तृत साम्राज्य का पूर्वी भाग उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था। सेल्यूकस ने ई.पू. 312 में बेबीलोन और बैट्रिया पर अधिकार करने के बाद भारत के पंजाब और सिंधु पर अपना प्रभुत्व पुनः स्थापित करने के उद्देश्य से ई.पू. 305-4 में सिंधु नदी तक आ गया था। इस बार सेल्यूकस को पंजाब और सिंधु के परस्पर युद्ध करनेवाले छोटे-छोटे राज्यों से नहीं, एक संगठित साम्राज्य के स्वामी चंद्रगुप्त से निपटना पड़ा। यूनानी तथा रोमन लेखकों ने सेल्यूकस और चंद्रगुप्त के बीच हुए युद्ध का कोई विस्तृत विवरण नहीं दिया है। केवल एप्पियानुस ने लिखा है कि सेल्यूकस ने सिंधु नदी पार की और भारत के सम्राट चंद्रगुप्त से युद्ध छेड़ दिया। अंत में उनमें संधि हो गई और वैवाहिक संबंध स्थापित हो गया।

जस्टिन के अनुसार चंद्रगुप्त से संधि करके और अपने पूर्वी राज्य को शांत करके सेल्यूकस एंटीगोनस से युद्ध करने चला गया। एप्पियानुस के कथन से स्पष्ट लगता है कि सेल्यूकस को चंद्रगुप्त के विरुद्ध सफलता नहीं मिली। स्ट्रैबो का कहना है कि सेल्यूकस ने विवाह-संबंध के फलस्वरूप ऐरियाना का प्रदेश चंद्रगुप्त को दे दिया और बदले में पाँच सौ हाथी प्राप्त किया। संभवतः यूनानी राजकुमारी मौर्य सम्राट को ब्याही गई और दहेज के रूप में चंद्रगुप्त को सेल्यूकस से चार प्रांत- एरिया अर्थात् हेरात, अराकोसिया अर्थात् कन्धार, जेड्रोसिया अर्थात् मकरान, पेरीपेमिसदाई अर्थात् काबुल प्राप्त हुए। अशोक के लेखों से भी प्रमाणित

होता है कि काबुल की घाटी मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत थी। इन अभिलेखों के अनुसार योन (यवन) गांधार भी मौर्य साम्राज्य के अंर्तगत थे। प्लूटार्क के अनुसार चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस को 500 हाथी उपहार में दिये। चंद्रगुप्त द्वारा दिये गये हाथी इप्टस के रणक्षेत्र में पहुँच गये और उसके शत्रु ऐंटीगोनस का गणित बिगड़ गया। इसके बाद पश्चिमी देशों में लड़े जानेवाले युद्धों के लिए भारतीय हाथियों की माँग होने लगी।

वैवाहिक संबंध से मौर्य सम्राटों और सेल्यूकस वंश के राजाओं के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध का सूत्रपात हुआ, जो बिंदुसार तथा अशोक के समय में भी बना रहा। एथेनियस के अनुसार चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस के पास कतिपय भारतीय औषधियों का उपहार, विशेषकर एक प्रकार का कामोद्दीपक द्रव, भेजा था जिसके बदले में सेल्यूकस ने मेगस्थनीज नामक अपना एक राजदूत चंद्रगुप्त के दरबार में भेजा, जिसने भारत के बारे में 'इंडिका' नामक ग्रंथ लिखा। मेगस्थनीज चंद्रगुप्त के दरबार में ई.पू. 304 से 299 तक रहा।

अब चंद्रगुप्त का साम्राज्य भारतीय सीमा का अतिक्रमण कर पारसीक साम्राज्य की सीमा को स्पर्श करने लगा और उसमें अफगानिस्तान का एक बड़ा भाग सम्मिलित हो गया। चंद्रगुप्त और सेल्यूकस के राज्य के बीच हिंदुकुश भारत की वैज्ञानिक सीमा बन गई, जिसे यूनानी लेखकों ने पैरोपेनिसस (इंडियन काकेशस) कहा है। दो हजार से अधिक वर्ष पूर्व भारत के प्रथम सम्राट ने उस प्राकृतिक सीमा को प्राप्त कर लिया जिसके लिए अंग्रेज व्यर्थ ही तरसते रहे और जिसे मुगल सम्राट भी कभी पूरी तरह प्राप्त करने में असमर्थ रहे।

चंद्रगुप्त का साम्राज्य-विस्तार

मगध के विस्तार की जो परंपरा बिंबिसार के काल में प्रारंभ हुई थी, वह चंद्रगुप्त के समय में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई। चंद्रगुप्त का विशाल साम्राज्य उत्तर पश्चिम में सिंधु नदी से लेकर दक्षिण में उत्तरी कर्नाटक तक विस्तृत था। पूरब में बंगाल से लेकर पश्चिम में सुराष्ट्र तथा सोपारा के संपूर्ण प्रदेश उसके अधीन थे। सिंधु एवं गंगा का मैदान तथा सुदूर उत्तर-पश्चिम चंद्रगुप्त के नियंत्रण में आ गये, जिससे मौर्य साम्राज्य की सीमाएँ निर्धारित हो गईं।

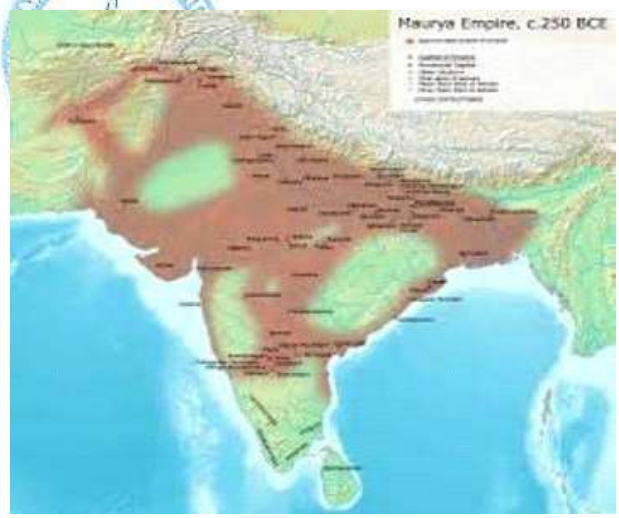

लोकोपकारिता के कार्य

यद्यपि चंद्रगुप्त मौर्य निरंकुश सम्राट था, फिर भी उसने प्रजा के भौतिक जीवन को सुखी बनाने कोयथा-संभव प्रयत्न किया। अर्थशास्त्र में राजा के द्वारा अनेक प्रकार के जनहित के कार्यों का निर्देश है, जैसे- बेकारों के लिए काम की व्यवस्था करना, विधवाओं और अनाथों के पालन का प्रबंध करना, मजदूरी और मूल्य पर नियंत्रण रखना। मेगस्थनीज ऐसे अधिकारियों का उल्लेख करता है जो भूमि को नापते थे और सभी को सिंचाई के लिए नहरों के पानी का उचित भाग मिले, इसलिए नहरों की प्रणालियों का निरीक्षण

करते थे। सिंचाई की व्यवस्था के लिए चंद्रगुप्त ने विशेष प्रबंध किया था। रुद्रदामन् के जूनागढ़ के अभिलेख से पता चलता है कि पश्चिमी भारत में सिंचाई की सुविधा के लिए उसके सुराष्ट्र प्रांत के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने ऐतिहासिक सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। यह झील गिरनार के समीप रैवतक तथा ऊर्जयत पर्वतों के जलस्रोतों के ऊपर कृत्रिम बाँध बनाकर निर्मित की गई थी। अशोक के समय में उसके राज्यपाल तुषास्प ने झील से पानी के निकास के लिए मार्ग बनवाया था। यह झील तत्कालीन अभियंत्रण कला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

धर्म और धार्मिक नीति

चंद्रगुप्त मौर्य धर्म में भी रुचि रखता था। यूनानी लेखकों के अनुसार जिन चार अवसरों पर राजा महल से बाहर जाता था, उनमें एक था- यज्ञ करना। कौटिल्य उसका पुरोहित तथा मुख्यमंत्री था। हेमचंद्र ने भी लिखा है कि वह ब्राह्मणों का आदर करता है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि चंद्रगुप्त वन में रहनेवाले तपस्वियों से परामर्श करता था और उन्हें देवताओं की पूजा के लिए नियुक्त करता था। वर्ष में एक बार विद्वानों की सभा बुलाई जाती थी ताकि वे जनहित के लिए उचित परामर्श दे सकें। दार्शनिकों से संपर्क रखना चंद्रगुप्त की जिज्ञासु प्रवृत्ति का सूचक है।

चंद्रगुप्त के जीवन का अंत

जैन परंपराओं के अनुसार चंद्रगुप्त मौर्य ने जीवन के अंतिम समय में जैन धर्म को स्वीकार कर लिया और भद्रबाहु की शिष्यता ग्रहण कर ली। कहते हैं कि उसके शासनकाल के अंतिम समय में मगध में बारह वर्षों का भीषण अकाल पड़ा, किंतु इस अकाल की स्थिति का समर्थन किसी अन्य स्रोत से नहीं होता है। चंद्रगुप्त मौर्य अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन का त्याग कर भद्रबाहु के साथ श्रवणबेलगोला (मैसूर) चला गया और वहीं चंद्रगिरि पहाड़ी पर 298 ई.पू. में एक सच्चे जैन भिक्षु की भाँति धीरे-धीरे अनाहार द्वारा अपने जीवन का अंत कर लिया। श्रवणबेलगोला की वह छोटी पहाड़ी आज भी 'चंद्रगिरि' के नाम से जानी जाती है और वहाँ 'चंद्रगुप्त बस्ती' नामक एक मंदिर भी है।

चंद्रगुप्त के शासनकाल की विभिन्न घटनाओं का कालक्रम निर्धारित करना कठिन है। यूनानी विवरणों और चीन के कैंटन लेख के आधार पर चंद्रगुप्त मौर्य का राज्यारोहण 322 ई.पू. में माना जा सकता है। पुराणों के अनुसार उसने 24 वर्ष तक राज्य किया था, इसलिए उसका शासनकाल ई.पू. 322 से ई.पू. 298 तक माना जा सकता है।

चंद्रगुप्त मौर्य का मूल्यांकन

चंद्रगुप्त मौर्य एक कुशल योद्धा, सेनानायक तथा महान् विजेता ही नहीं था, वरन् एक योग्य शासक भी था। एक सामान्य कुल में उत्पन्न होकर उसने अपनी योग्यता और कुशलता के बल पर भारत का प्रथम सम्राट होने का गौरव प्राप्त किया। उस प्रथम ऐतिहासिक सम्राट ने चक्रवर्ती सम्राट के आदर्श को वास्तविक स्वरूप प्रदान किया। उसने न केवल मगध के नंदवंश का उन्मूलन किया और पंजाब-सिंधु को विदेशी दासता से मुक्त किया, वरन् भारत के अधिकांश भागों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर उन्हें एक राजनीतिक सूत्र में आबद्ध किया। चंद्रगुप्त के विशाल साम्राज्य में लगभग संपूर्ण उत्तरी और पूर्वी भारत के साथ-साथ उत्तर में बलूचिस्तान, दक्षिण में मैसूर तथा दक्षिण-पश्चिम में सौराष्ट्र तक के विस्तृत भू-प्रदेश सम्मिलित थे।

चंद्रगुप्त मौर्य युद्ध में जितना स्फूर्तिवान् था, शांतिकाल में उतना ही कर्मठ था। उसने अपने विस्तृत साम्राज्य पर कुशल प्रशासन के लिए एक सुदृढ़ शासन व्यवस्था का निर्माण किया। उसके शासन-प्रबंध का उद्देश्य लोकहित था। जहाँ एक ओर आर्थिक विकास एवं राज्य की समृद्धि के लिए अनेक ठोस कदम उठाये गये और शिल्पियों एवं व्यापारियों के जान-माल की सुरक्षा की गई, वहीं दूसरी ओर जनता को उनकी अनुचित तथा शोषणात्मक कार्य-विधियों से बचाने के लिए कठोर नियम भी बनाये गये। दासों और कर्मकारों को मालिकों के अत्याचार से बचाने के लिए विस्तृत नियम बने। अनाथ, दरिद्र, मृत सैनिकों तथा राजकर्मचारियों

के परिवारों के भरण-पोषण का भार राज्य के ऊपर था। तत्कालीन मापदंड के अनुसार चंद्रगुप्त का शासन-प्रबंध एक कल्याणकारी राज्य की धारणा को चरितार्थ करता है। प्रजाहित में सुदर्शन झील का निर्माण उसकी प्रजावत्सलता को प्रदर्शित करता है।

यद्यपि शासन निरकुंश था, दंड व्यवस्था कठोर थी और व्यक्ति की स्वतंत्रता का सर्वथा अभाव था, किंतु यह सब नवजात साम्राज्य की सुरक्षा तथा प्रजा के हितों को ध्यान में रखकर किया गया था। चंद्रगुप्त की शासन व्यवस्था का चरम लक्ष्य अर्थशास्त्र के निम्न उद्धरण से व्यक्त होता है- 'प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है और प्रजा की भलाई में उसकी भलाई। राजा को जो अच्छा लगे वह हितकर नहीं है, वरन् हितकर वह है जो प्रजा को अच्छा लगे।'

बिंदुसार

चंद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बिंदुसार ई.पू. 298 में मगध का शासक हुआ। मौर्य राजवंश के इस द्वितीय शासक को ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रंथों एवं यूनानी-रोमन लेखकों ने विविध नामों से उल्लिखित किया है। पुराणों में उसे बिंदुसार, भद्रसार व नंदसार आदि नामों से पुकारा गया है। जैन ग्रंथ परिशिष्टपर्वन् तथा बौद्ध ग्रंथ महावस्तु में उसे बिंदुसार ही कहा गया है। एक अन्य जैन ग्रंथ राजवलिकथे में उसे सिंहसेन कहा गया है। रोमन-यूनानी लेखकों में एथेनिओस उसे अमित्रोकेटीज तथा स्ट्रैबो अलित्रोकेटीज कहता है। फ्लीट के अनुसार अमित्रोकेटीज व अलित्रोकेटीज 'अमित्रखाद' का यूनानी रूपांतर है, जिसका संस्कृत रूपांतर 'अमित्रघात' या 'अमित्रखाद' (शत्रुनाशक) है। संभवतः अमित्रघात बिंदुसार का विरुद रहा होगा। लगता है कि अमित्रघात एक परंपरागत उपाधि थी जिसे शासक यदा-कदा धारण करते थे।

परिशिष्टपर्वन् में बिंदुसार के जन्म के संबंध में एक रोचक कहानी मिलती है। इसके अनुसार चाणक्य चंद्रगुप्त के प्राणों की रक्षा एवं षड्यंत्रों के प्रति सजग रहता था। उसे डर था कि कोई चंद्रगुप्त की विष या विष-कन्या द्वारा हत्या करवा सकता है, इसलिए वह उसे विष का अभ्यास करवाता था। इसके लिए शासक को प्रतिदिन भोजन में विष दिया जाता था। एक दिन संयोग से उसकी महिषी दुर्धरा, जो आसन्नप्रसवा थीं, भोजन करने बैठ गई। उसे भोजन में विष होने की जानकारी नहीं थी। भोजन-ग्रहण करते ही वह विष के प्रभाव से दिवंगत हो गई। किंतु चाणक्य ने रानी का पेट चीरकर गर्भस्थ शिशु को बचा लिया। कहा जाता है कि बालक के सिर पर विष का एक बिंदु था, इसलिए उसका नाम बिंदुसार रखा गया-

विषबिंदुश्च संक्रातस्तस्य बालस्य मूर्धनि।
ततश्च गुरुभिर्बिंदुसार इत्यभिधायिसः।।

इसी से मिलती-जुलती कथा बौद्ध ग्रंथ वंसत्थपकासिनी में भी मिलती है। सत्यता जो भी हो, उसकी माता का नाम दुर्धरा ही था।

बिंदुसार की उपलब्धियाँ

बिंदुसार की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उसने अपने पिता द्वारा जीते गये क्षेत्राों को पूर्णरूप से अक्षुण्ण रखा था। तिब्बती लामा तारानाथ तथा जैन अनुश्रुति के अनुसार चाणक्य बिंदुसार का भी मंत्री था। चाणक्य ने सोलह राज्य के राजाओं तथा सामंतों का नाश किया और बिंदुसार को पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्रपर्यंत भू-भाग का अधीश बनाया। इस आधार पर अनेक इतिहासकारों का विचार है कि दक्षिण भारत को मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत लानेवाला मौर्य शासक चंद्रगुप्त नहीं, बिंदुसार ही था। कुछ इतिहासकारों का अनुमान है कि बिंदुसार की 'अमित्रघात' या 'अमित्रखाद' उपाधि दक्षिण में उनके सफल सैनिक अभियानों के लिए ही दी गई होगी। संभवतः चंद्रगुप्त की मृत्यु के बाद कुछ राज्यों ने मौर्यसत्ता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। तारानाथ ने भी 'सामंतों' पर विजय का उल्लेख किया है, इससे लगता है कि चाणक्य ने सामंतों के विद्रोह का सफलतापूर्वक दमन किया था।

दिव्यावदान में उत्तर-पश्चिमी प्रांत उत्तरापथ की राजधानी तक्षशिला में ऐसे ही विद्रोह का उल्लेख

है, जिसका दमन करने के लिए उसने अपने सुयोग्य पुत्र अशोक को नियुक्त किया था। जब अशोक तक्षशिला पहुँचा, तो वहाँ के निवासियों ने उससे निवेदन किया था कि 'न हम कुमार के विरुद्ध हैं और न राजा बिंदुसार के, किंतु दुष्ट अमात्य हमारा अपमान करते हैं-

न वयं कुमारस्य विरुद्धा: नापि राज्ञो बिंदुसारस्य।
अपितु दुष्टामात्या: अस्माकं परिभवं कुर्न्ववन्ति।।

इसके पश्चात् अशोक खस देश गया था। खस संभवत: नेपाल के आस-पास का प्रदेश था। तारानाथ के अनुसार खस्या और नेपाल के लोगों ने विद्रोह किया और अशोक ने इन प्रदेशों को जीता। दिव्यावदान से ही ज्ञात होता है कि बिंदुसार के अंतिम वर्षों में भी तक्षशिला में विद्रोह हुआ था। उस समय अशोक उज्जैन में था, इसलिए उस विद्रोह का दमन करने के लिए उसने राजकुमार सुसीम को भेजा था। इस प्रकार बिंदुसार ने अपने पुत्रों की सहायता से न केवल पैतृक राज्य की रक्षा की, अपितु उसका विस्तार भी किया।

वैदेशिक-संबंध

विदेशों के साथ बिंबिसार ने शांति और मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये रखा। सेल्यूकस वंश के राजाओं तथा अन्य यूनानी शासकों के साथ चंद्रगुप्त के समय के संबंध इस सम्राट के काल में भी बने रहे। स्ट्रैबो के अनुसार सीरिया के सम्राट ए।टियोकस प्रथम का राजदूत डायमेकस बिंदुसार के दरबार में रहता था। डायोडोरस ने भी लिखा है कि पाटलिपुत्र का शासक यूनानियों के प्रति आदरभाव रखता था। प्लिनी के अनुसार मिस्र के शासक टॉल्मी द्वितीय फिलाडेल्फस (ई.पू. 285-ई.पू. 247) ने डायोनियस नामक एक राजदूत को भारतीय शासक (बिंदुसार) के दरबार में नियुक्त किया था। एथेनियास के विवरण से स्पष्ट है कि उसने अपने मित्र सीरियाई सम्राट एंटियोकस से मीठी शराब, सूखी अंजीर और यूनानी दार्शनिक खरीदकर भेजने की प्रार्थना की थी। उत्तर में कहा गया था कि हम आपके पास शराब भेज सकेंगे, किंतु यूनानी विधान के अनुसार दार्शनिक का विक्रय नहीं होता है।

धर्म और धार्मिक नीति

बिंदुसार जिज्ञासु प्रवृत्ति का शासक था जो विद्वानों तथा दार्शनिकों का आदर करता था। ऐथेनियस के अनुसार बिंदुसार ने सीरियाई शासक एंटियोकस को एक यूनानी दार्शनिक भेजने के लिए लिखा था, जो उसकी दार्शनिक अभिरुचि एवं चिंतनात्मक प्रवृत्ति का सूचक है। महावंस के अनुसार उसने साठ हजार ब्राह्मणों को सम्मानित किया था। दिव्यावदान की एक कथा के अनुसार आजीवक परिव्राजक बिंदुसार की सभा को सुशोभित करते थे।

प्राय: बिंदुसार के मृत्य की तिथि ई.पू. 272 निर्धारित की जाती है, किंतु कुछ विद्वान् मानते हैं कि बिंदुसार की मृत्यु ई.पू. 270 में हुई थी। पुराणों के अनुसार बिंदुसार ने चौबीस वर्ष तक, किंतु महावंस के अनुसार सत्ताईस वर्ष तक राज्य किया। आर्यमंजुश्रीमूलकल्प के अनुसार उसने बीस वर्ष शासन किया। यदि चंद्रगुप्त के शासनकाल का अंत ई.पू. 298 हुआ तथा अशोक ने ई.पू. 273 में राज्य-ग्रहण किया, तो स्पष्ट है कि बिंदुसार ने 25 वर्ष शासन किया। इस प्रकार बिंदुसार का शासनकाल ई.पू. 298 से ई.पू. 273 तक माना जा सकता है।